सुख और दुःख का अन्तर्दर्शन

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,
पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

सुख और दुःख का अन्तर्दर्शन क्या है ? इस विषय पर चिन्तन किया जा रहा है। जो अनुकूल है वह सुख है और जो प्रतिकूल है वह दुःख है। सुख और दुःख मनुष्यकृत है। प्रायः लोग यह कहते हैं कि सुख और दुःख किसी दूसरे के द्वारा दिया जाता है किन्तु यदि गम्भीरता पूर्वक विचार किया जाये तो यह प्रतीत होता हैं कि सुख दुःख मनुष्य का अपना बोया हुआ है। दार्शनिक दृष्टि से देखा जाये तो आत्मरमण करना ही सुख है। इसके अतिरिक्त जितनी भी सांसारिक वस्तुएं हैं वे सब दुःख स्वरूप है। मानव जब परायी वस्तु को अपना मान लेता है तो उसे दुःख का मिलना स्वाभाविक है। वैभाविक जितनी भी प्रवृत्तियां है उनसे दुःख ही उत्पन्न होता है, किन्तु मानव उन्हें ही सुख स्वरूप मानता है। जैसे कुत्ता सुखी हुयी हड्डी को खाता हैं और स्वयं के मुख से निकले हुये रक्त को चाटकर सुख की अनुभूति करता है वैसे ही यह सांसारिक सुख भी है। मानव माया स्वरूप इस संसार को सत्य मानकर के व्यवहार करता है। यह मेरा है, यह तेरा है इसी में पूरे जीवन को बिता देता है। जो वास्तविक सुख है उधर उसका ध्यान ही नहीं जाता। इसीका परिणाम है कि वह दुःख को सुख मान बैठता है और प्रसन्नता का अनुभव करता है।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा हैं कि सूत्र में मोतियों की भांति यह सम्पूर्ण संसार मुझमें ही समाया हुआ है। जो मानव इस बात को स्वीकार कर आनन्द की अनुभूति करता है वह तो सुख प्राप्त करता है किन्तु जो अहंकारवश ईश्वर या परमात्मा को अन्यत्र खोजता है उसे कही भी परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती। जैसे पानी और हिम एक ही है केवल रूपान्तरण दिखाई देता है वैसे ही आत्मा और परमात्मा एक ही है, केवल दृष्टि का अन्तर है। माया के कारण यह संसार भिन्न रूप में प्रतीत होता है। इसकी वास्तविकता यह है कि यह वास्तव में है ही नहीं। जिस प्रकार से रज्जु में सर्प की प्रतीति होती है किन्तु जब प्रकाश की सहायता से रस्सी का ज्ञान होता है तो वहां सर्प नहीं रहता केवल रज्जु ही रहती है। वैसे ही यह संसार है। यथार्थ का ज्ञान होने पर सत्य की प्रतीति हो जाती है। दर्शन का सत्य यही है। प्रायः

सभी दर्शनों में सुख और दुःख की मीमांसा की गई है और सभी दर्शनों ने इसके स्वरूप को जानने का प्रयास किया है। सभी दर्शनों का सत्य प्रायः समान ही है। रास्ते अलग–अलग है। जिस प्रकार से नदियां अनेक मार्गों से होती हुई अन्त में समुद्र में मिल जाती हैं, उसी प्रकार से चिन्तन की धाराएं सभी दर्शनों की अलग–अलग हैं किन्तु अन्तिम सत्य सबका एक ही है। मोक्ष जो जीवन की अन्तिम अवस्था हैं वही पूर्ण सत्य है। इसको प्राप्त करने के लिए सभी दर्शनों ने अपने–अपने मार्ग बतलाये हैं। भौतिकवादी दर्शन देहात्मवाद में विश्वास करता है अर्थात् देह को ही आत्मा मानकर के जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करना चाहता है, किन्तु यह सुख भौतिक सुख है। प्रिय का मिलन और अप्रिय का संयोग सुख दुःख हो सकता है। इस संसार में सभी सुख की इच्छा करते हैं दुःख कोई नहीं चाहता। लेकिन दुःख अपने आप मनुष्य के पास आ जाता है। इसका कारण यह है कि जो मनुष्य जैसा कर्म करता है उसे उसका फल सुख और दुःख के रूप में प्राप्त होता है। यदि मानव अच्छा कर्म करता है तो उसे सुख की प्राप्ति होती है और यदि बुरा कर्म करता है तो उसे दुःख की प्राप्ति होती है। इसलिए सुख दुःख को मनुष्यकृत कहा गया है। बंधन का अर्थ है– परतंत्रता और मुक्ति का अर्थ है स्वतंत्रता। परतंत्रता दुःख स्वरूप है और स्वतंत्रता सुख स्वरूप। किसी भी तोते को यदि पिंजड़े में बांधकर रखा जाये और उसे खाने के लिए अच्छी–अच्छी वस्तुएं प्रदान की जाये फिर भी वह प्रसन्न नहीं रहता। वह मुक्त गगन में विचरण करना चाहता है। परतंत्रता किसी को प्रिय नहीं होती, स्वतंत्रता सबको प्रिय होती है। पशु, पक्षी, मानव सभी स्वतंत्र रहना चाहते हैं। यह तो बंधन का एक स्वरूप हुआ। कषाय सहित होने से जीव कर्म के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है, वह बन्ध है। मिथ्यादर्शनादि द्वारों से आए हुए कर्म पुद्गलों का आत्मप्रदेशों में एक क्षेत्रावगाह हो जाना बन्ध है। जैसे बेड़ी आदि से बंधा हुआ प्राणी परतन्त्र हो जाता है और इच्छानुसार देशादि में नहीं आ–जा सकता, उसी प्रकार कर्मबद्ध आत्मा परतन्त्र होकर अपना इष्ट विकास नहीं कर पाता। अनेक प्रकार के शरीर और मानस दुःखों से दुःखी होता है। राग–द्वेषादि के निमित्त से जीव के साथ पौद्गलिक कर्मों का बन्ध निरन्तर होता है। जीव के भावों की विचित्रता के अनुसार वे कर्म भी विभिन्न प्रकार की फलदान शक्ति को लेकर आते हैं, इसी से वे विभिन्न स्वभाव या प्रकृति वाले होते हैं।

प्रकृति का अर्थ स्वभाव है। जिस प्रकार नीम की क्या प्रकृति है? कडुआपन। गुड़ की क्या प्रकृति है? मीठापन। उसी प्रकार ज्ञानावरण कर्म की क्या प्रकृति है? अर्थ का ज्ञान न होना इत्यादि। मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और मन, वचन, काय की प्रवृत्ति ये सब कर्मों के आने के द्वार होने से आस्रव हैं। इनसे विपरीत सम्यक्त्व, देशव्रत, महाव्रत, मोह व कषायहीन शुद्धात्म परिणति तथा मन, वचन, काय के व्यापार की निवृत्ति ये सब नवीन कर्मों के निरोध के हेतु होने से संवर हैं। जिस प्रकार बन्धन युक्त प्राणी स्वतन्त्र होकर यथेच्छ गमन करता है, उसी तरह कर्म–बन्धन मुक्त आत्मा स्वाधीन हो अपने अनन्त ज्ञानदर्शन सुख आदि का अनुभव करता है। मनुष्य गति से ही जीव का मोक्ष होना संभव है। यही सुख दुःख का अन्तर्दर्शन है।